आपने लिखा

मुझे 'संदर्भ' के तीन अंक - 58, 59 व 60 तथा 2007-08 का वार्षिक प्रतिवेदन प्राप्त हुए। साथ ही विज्ञान कथा 'अस्सी दिन में दुनिया का चक्कर' के तीनों भाग सधन्यवाद प्राप्त किए। इस कहानी की छूटी हुई तीसरी कड़ी का लुत्फ उठाया। अंक-58 में छपी ज़िग्मोंद मोरित्ज़ की हंगेरियन कहानी 'सात पैसे' ने दिल को छू लिया। अंक-59 में अन्तोन चेखव की 'एक घटना' भी मार्मिक लगी। उम्मीद है, आप सन्दर्भ के आगामी अंकों में भी इसी प्रकर का उच्चकोटि साहित्य परोसते रहेंगे।

अभी मैं आपके द्वारा भेजी गई सामग्री का भली-भाँति अध्ययन नहीं कर पाया हूँ अतः छापी गई रचनाओं पर विशेष प्रतिक्रिया व्यक्त करने में असमर्थ हूँ। फिर भी जीव विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते कार्ल लीनियस की जीवनी काफी पसन्द आई। 'कमल की पत्तियाँ, इतनी साफ और बेदाग क्यों?' में एक जटिल जैव-भौतिकीय समस्या को सीधे-सादे अन्दाज़ में प्रस्तुत किया गया है। 'टिटहरी के बच्चों की लुका-छिपी' का सूक्ष्म अध्ययन कर हमारे साथ अपना अनुभव बाँटने वाले कमल किशोर कुम्भकार जी धन्यवाद के पात्र हैं। सोनी बुआ के स्कूल के बारे में जानकर सन्तोषयुक्त प्रसन्नता का अहसास हुआ। खच्चर से सम्बन्धित प्रजाति समस्या को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत कर सुशील जोशी जी ने प्राणी विज्ञान के इस आयाम पर मेरा ध्यान फोकस किया है जिसके लिए मैं उनका शुक्रगुज़ार हूँ। अंक-61 में फ्रैडरिक ब्राउन की रचना 'हथियार' वाकई आँखें खोलने वाली है।

विशेष अगले खत में। उम्मीद है कि संदर्भ का 62वाँ अंक, यदि छप गया हो, तो जल्द भिजवाकर मुझे अनुग्रहीत करेंगे। अगले अंक की प्रतीक्षा में,

शुभेन्दु रॉय
साहिबगंज, झारखण्ड

अरसे बाद पत्र लिख रहा हूँ। संदर्भ दल से मेरा सम्पर्क लगभग टूट ही गया है।

'तोहफे वाला पेन' की समस्या (वाकई क्या यह समस्या है?) के बहुत-से कारण हैं।

- बच्चे को अपने पैसे (अपनी गुल्लक में इकट्ठा करने के कारण) का बुद्धिमत्ता पूर्ण तरीके से उपयोग करने का पूरा अधिकार है। आखिरकार, बच्चे अपनी गुल्लक में बड़ों के लिए थोड़े न पैसे इकट्ठे करते हैं।
- बड़ों द्वारा तो बहुत बार गलत चीज़ें खरीद ली जाती हैं, उधार दिए गए रुपए वापस नहीं मिल पाते, सामान खराब निकल जाता है आदि तब

तो हम कुछ नहीं कहते।

- वो पेन अपने सहयोगियों को दिखाने ऑफिस ले जाते और वहाँ से गुम जाता तो आप क्या करते, दोषी कौन होता?
- जब तक बच्चे द्वारा रुपए का गलत उपयोग (खर्च) न हो तब तक उससे कुछ कहना उसकी बुद्धिमत्ता पर प्रश्न चिन्ह लगाना है।
- हम बड़े, प्रायः बच्चों को कुछ गलत न होने पर भी कुछ-न-कुछ सीख और डाँट देते रहते हैं। जैसे बच्चे ने कभी भी गिलास न तोड़ा हो तो भी बड़े कहते रहेंगे - सम्भालकर ले जाना, देखो गिरा न देना, तोड़ न देना। वहीं हम बड़ों से यदि कोई कह दे कि यार पर्दे से हाथ न पौंछ देना तो शायद दोस्ती ही टूट जाए।
- भूल होने तक तो किसी को कुछ कहो ही नहीं, भूल होने पर भी भूल-सुधार का मौका दिया जाना चाहिए।

इस घटना के बारे में चर्चा होने पर बड़े लोग बहुत-से सवाल खड़े कर देंगे। उनकी एक बानगी और प्रत्युत्तर यहाँ प्रस्तुत हैं।

बच्चे तो पैसे कमाते नहीं तो उनको गुल्क में पैसे क्यों जमा करने चाहिए? हमारे द्वारा दिए गए पैसों से बचत होती है, क्या इसलिए हम अपना अधिकार समझते हैं, उन पैसों पर?

बच्चे बचत करना सीखेंगे।... हम कितनी बचत करना सीखे? हमारी ज़रूरतों की चीज़ें तो हम उधार लेकर पूरी करना चाहते हैं।

क्या गुल्लक आज भी प्रासंगिक हैं? क्या गुल्लक में पैसे जमा करना मात्र बच्चों को बहलाना, या मनोरंजन मात्र है?

यदि ज़्यादा रकम जमा हो जाए तो क्या हम भी उसमें हिस्सेदार होने की सोचने लगते हैं? प्रश्न और उत्तर आपस में गुँथे हैं, फिर भी...

दिलीप झा
रायपुर, छत्तीसगढ़

नवम्बर 2008-फरवरी 2009 का अंक देखा और एन.सी.ई.आर.टी. की नई पुस्तकों पर लिखे कमलेश जोशी और चन्दन यादव के लेख पढ़े। प्राथमिक शिक्षा पर तीन लेख पढ़कर अच्छा लगा।

कमलेश जोशी का लेख 'पाठ्य पुस्तकों के नए स्वर' बहुत कुछ कहते हुए भी कुछ खास नहीं कह रहा है। प्राथमिक पुस्तकों के साथ तुलना के उनके बिन्दु वास्तव में कई मायनों में खरे नहीं उतरते। भाषा की विषय वस्तु की अगर हम बात करें तो हर भाषा की पुस्तक में विभिन्न विधाओं के पाठ होते हैं - कहानी, कविता, निबन्ध, वार्तालाप, नाटक आदि और आमतौर पर ये लेखकों की अपनी समझ के अनुसार बच्चों के अनुभवों से जोड़ते हुए चुने जाते हैं - तोते,

कुत्ते, शहर, घर, गाँव, बाज़ार सम्बन्धित पाठ अधिकांश पुस्तकों में होते हैं।

राष्ट्रीय व्यक्तित्वों पर भी कहानी, कविता होती थी - कुछ जो ज़िन्दगी भर याद रहीं जैसे - माँ खादी की चादर ला दे मैं गाँधी बन जाऊँ, या फिर गाँधी जी की बुरी लिपि, या फिर उनके सच बोलने की घटना। 'तोता हरे पर वाला' भी काफी सुन्दर कविता थी। हिन्दी पाठ्य पुस्तकों में एकाध ही विदेशी कहानी होती थी और वो भी तो ज़रूरी है।

फिर भी एन.सी.ई.आर.टी. की नई पुस्तकें कई मायनों में पुरानी भाषा की पुस्तकों से अलग हैं। रंगीन चित्रों (जो कि एक बाहरी लक्षण है) के अलावा इन भिन्नताओं को पकड़ने के लिए ज़्यादा गहराई में जाना पड़ेगा। भाषा शिक्षण के सिद्धान्तों की बहस में, सामाजिक संरचना के भाषा विकास से सम्बन्ध में, भाषाई व साहित्यिक पहलुओं में और बाल विकास के भाषाई आयामों में भी, जो कि ये लेख बिलकुल नहीं छूता। दूसरी ओर इन पुस्तकों के कक्षाई अनुभव पर इस लेख में कुछ नहीं है। इन दोनों कारणों से इस लेख की गहराई में काफी कमी रह गई है।

यही कमी एन.सी.ई.आर.टी. की भाषा की किताबों पर दिए गए चन्दन यादव के लेख 'सवालों में छिपी सम्भावनाएँ' में भी झलकती है। हालाँकि इस लेख में सवालों का एक मोटा विश्लेषण ज़रूर है पर इन पुस्तकों में दिए गए सवालों के विश्लेषण के ढाँचे और उनके कक्षाई अनुभवों की कमी इस लेख में भी झलकती है। उस उम्र के बच्चे, क्या हमारी उनके बारे में मान्यताओं के अनुरूप पाए जाते हैं या उस पर सवालिया निशान खड़ा होता है? शिक्षकों की अपनी समझ इन सवालों के बारे में क्या दर्शाती है? इन प्रश्नों पर कक्षाई अनुभव कुछ रोशनी डाल सकेंगे।

मेरा सुझाव है कि 'संदर्भ' में छापे जाने वाले शिक्षा सम्बन्धी लेखों में जहाँ तक हो सके सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित विषयों के अनुभव का विश्लेषण शामिल हो।

अंजलि नरोना,
भोपाल, म.प्र.

संदर्भ में प्रकाशित 'सूर्य ग्रहण' से सम्बन्धित लेख

	अंक	पृष्ठ क्रमांक
सूर्य ग्रहण के समय	06	92
सूर्यग्रहण, एक रिपोर्ट	11	23
खग्रास सूर्य ग्रहण	27	28